International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Volume 7 -Issue 12-December -2017,
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

राष्ट्रकूटों की ऐतिहासिक भूमिका एवं सांस्कृति योगदान

डॉ. राजकुमार, सहायक प्रोफेसर,
राजकीय महिला महाविद्यालय, बवानी खेड़ा

750 से 1000 ई के बीच उत्तर तथा दक्षिण भारत में कई शक्तिशाली साम्राज्यों का उदय हुआ जिनमें पाल प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट प्रमुख थे। ये सभी हर्ष की मृत्यु से उत्पन्न उत्तरी भारत में हुई रिक्तता का लाभ उठाकर समृद्ध गंगा घाटी का स्वामित्व प्राप्त करना चाहते थे और कन्नौज इस संघर्ष के लक्ष्य का प्रतीक बन गया, जो उत्तर भारत की प्रभुता का प्रतीक बन गया। कन्नौज को अब वही प्रतिष्ठा व स्थान प्राप्त था जो कभी पाटलीपुत्र को था। इनमें राष्ट्रकूट एक अनोखा राजवंश था, जिसने योद्धाओं और योग्य शाशकों की लम्बी श्रृंखला दी जिन्होने समकालीन भारतीय इतिहास के ओज को युद्ध व शान्ति की कलाओं से दक्षिण में स्थापित कर दिया।

चौथी शताब्दी के पश्चात के कतिपय अभिलेखों में राष्ट्रकूटों की चर्चा है। इनकी चर्चा प्रांतीय अधिकारियों के रूप में हुई। राष्ट्रकूटों के बारे में प्रमाण मध्य भारत एवं महाराष्ट्र के उत्तरी भाग से प्राप्त होते हैं। उनके अभिलेखों से ज्ञात होता है कि वे महाराष्ट्र के लातूर क्षेत्र से संबंध रखते थे क्योंकि बहुत सारे राष्ट्रकूट शासकों ने लट्टालूर परमेश्वर की उपाधी ली।

राष्ट्रकूट वंश के प्रथम शासक वर्ग का संस्थापक मलक्का को माना जाता है। अतोली–छरोली पत्र से यह ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट शासकों की कई पीढ़ियाँ थी जो अग्रलिखित हैं : कर्का प्रथम, ध्रुव, गोविन्द, लरका द्वितीय। एलोरा के दशावतार गुफा से प्राप्त अभिलेख से राष्ट्रकूट वंश के संबंध में जानकारी मिलती है। महाराष्ट्र–दक्कन में नवोदित राष्ट्रकूटों ने आरम्भ में अरबों का विरोध करके महत्ता प्राप्त की और महाराष्ट्र क्षेत्र में अपने राज्य का विस्तार किया। राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेत थी। राष्ट्रकूट ने वेंगी के पूर्वी चालुक्यों, दक्षिण में काँची के पल्लव और मदुरा के पांडयों के साथ निरंतर संघर्ष जारी रखा। प्रसिद्ध राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम, अमोघ वर्ष, इंद्र तृतीय एवं कृष्ण तृतीय को माना जाता है। प्रतिहार शासक की पराजय एवं 915 ई0 की कन्नौज लूट के बाद इंद्र तृतीय अपने समय का प्रतापी शासक था। उस समय भारत भ्रमण पर आये अलमसूदी के अनुसार राष्ट्रकूट राजा वल्लभराज या वल्लभ, भारत का सर्वश्रेष्ठ राजा था। कृष्ण तृतीय ने भी युद्ध की नीति जारी रखी। उसने दक्षिण मे रामेश्वरम पर आक्रमण कर वहाँ एक देवालय और विजय स्तंभ की स्थापना की किन्तु उसकी आक्रामक नीति से उसके पड़ोसी रूष्ट हो गए। 965 ई. में कृष्ण तृतीय की मृत्यु हो गई। फिर 972 ई. में इसके पड़ोसी राज्यों ने राष्ट्रकूटों की राजधानी पर हमला कर उसे जला डाला। इसी के साथ राष्ट्रकूटों की प्रभुता की अंत हो गया ।

उत्तर में राष्ट्रकूटों की सबसे बड़ी अभिलाषा थी – कन्नौज पर नियंत्रण करना। कन्नौज उस समय राजनीतिक प्रभुता का प्रतीक बन गया था। 8वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कन्नौज पर आयुधों का शासन था। यह संघर्ष लगभग एक शताब्दी तक चलता रहा था। अंततः नवीं शताब्दी के प्रारंभ में गुर्जर

प्रतिहार कन्नौज पर आधिपत्य करने में सफल हुए। कन्नौज हर्ष काल से ही उत्तर भारत का एक महत्त्वपूर्ण स्थल था। अब कन्नौज को यही प्रतिष्ठा मिली थी जो कभी पाटलीपुत्र को प्राप्त थी। नदी मार्ग की बहुलता के कारण कन्नौज उत्तरी एवं पूर्वी भारत में एक महत्वपूर्ण नगर हो चुका था। यहाँ की भूमि उपजाऊ थी। इसलिए इस क्षेत्र में समृद्धि आई। अंततः कन्नौज पर आधिपत्य राजनीतिक महत्वाकांक्षा का प्रतीक बन गया था। राष्ट्रकूट उत्तर भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करने वाले दक्षिण की पहली शक्ति थी। समकालीन उत्तर भारत की राजनीति में राष्ट्रकूटों की वही भूमिका थी जो भूमिका आगे मराठों ने प्राप्त की। कन्नौज पर आधिपत्य के लिए पाल प्रतिहार एवं राष्ट्रकूटों के बीच चलने वाला दीर्घ संघर्ष त्रिपक्षीय संघर्ष के नाम से जाना जाता है। यह संघर्ष कई चरणों में पूरा हुआ। कन्नौज पर नियंत्रण करने वाली शक्तियाँ भी बदलती रही।

कन्नौज पर कब्जे के लिए सर्वाधिक आतुरता गुर्जर प्रतिहारों को थी। इस दिशा में वास्तविक पहल प्रतिहार शासक वत्सराज ने की, उसने पाल शासक धर्मपाल को पराजित किया। अभी वह युद्ध भूमि से लौटा ही था कि राष्ट्रकूट ध्रुव ने उस हमला कर दिया। वत्सराज हार गया परन्तु ध्रुव की विजय स्थाई नहीं रही क्योंकि उत्तर भारत पर नियंत्रण रखना भौगोलिक बाधा के कारण संभव नहीं था। दूसरे राष्ट्रकूट दरबार में उत्तराधिकार विवाद शुरू हो चुका था। इसलिए ध्रुव दक्षिण लौट गया। इस तरह ध्रुव की सफलता अल्पकालिक सिद्ध हुई।

द्वितीय चरण में सिर्फ दो शक्तियाँ पाल और प्रतिहार ही मैदान में थी। राष्ट्रकूट शासक उस समय तक उत्तराधिकार विवाद से उबर नहीं पाया था। अतः इस चरण में वह हस्तक्षेप नहीं कर सका। यही वजह है कि इस चरण में पाल शासक धर्मपाल का पलड़ा भारी रहा। वह कन्नौज पर अपने पक्षकार शाशक चक्रायुद्ध को स्थापित करने में सफल रहा। उसी समय धर्मपाल ने उत्तरापथ स्वामी की उपाधि ली। संभवतः प्रतिहार वत्सराज धर्मपाल को नियंत्रित करने में असफल रहा । संघर्ष के इस चरण में नए प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय के अधीन प्रतिहार शक्ति पुनः संगठित हुई। प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय के लिए पाल शासक धर्मपाल कड़ी चुनौती था। अतएव, प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय ने धर्मपाल को कन्नौज से खदेड़ दिया एवं वहाँ अपने पक्षधर इंद्रायुद्ध को स्थापित किया। किन्तु तभी राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ने युद्ध में हस्तक्षेप किया और उसने नागभट्ट को पराजित कर दिया। इसलिए नागभट्ट की यह विजय स्थाई नहीं हो सकी। किन्तु गोविन्द तृतीय अधिक समय तक उत्तर भारत में उपस्थित नहीं रह सका क्योंकि पुनः राष्ट्रकूट दरबार में उत्तराधिकार विवाद प्रारंभ हो चुका था। इस चरण में मुख्य संघर्ष राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय एवं प्रतिहार शासक नागभट्ट के बीच ही हुआ। गोविन्द ने उत्तर में अभियान करके प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीस को परास्त किया।

अगले चरण में पाल शासक देवपाल को खाली मैदान मिला गया क्योंकि नागभट्ट द्वितीय का उत्तराधिकारी रामभद्र एक कमजोर और अयोग्य शासक था दूसरी तरफ राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष अल्पवयस्क था और अनेक तरह की कठिनाइयों से घिरा हुआ था। देवपाल ने प्रतिहार क्षेत्र पर हमला करके प्रतिहार शासक रामभद्र को पराजित किया।

इस चरण में प्रतिहारों ने पाल एवं राष्ट्रकूट शासकों की स्थिति से लाभ उठाया। देवपाल के बाद उसके उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए। दूसरी तरफ प्रतिहारों का योग्य शासक मिहिरभोज और उसके पुत्र महेंद्रपाल की सेवा प्राप्त हुई। मिहिरभोज ने राष्ट्रकूट शासक संभवतः कृष्ण द्वितीय से संघर्ष किया। इसके विपरीत मिहिरभोज ने कन्नौज पर आधिपत्य करने में सफल रहा किन्तु त्रिदलीय संघर्ष का कोई निर्णायक अन्त नहीं हो सका और एक लंबे संघर्ष काल के बाद तीनों शक्तियाँ कमजोर पड़ गई। 10वीं सदी के आरंभ के पश्चात तीनों शक्तियों का पतन शुरू हो गया। आगे पाल वंश का स्थान सेन वंश ने ले लिया। 972 ई. में राष्ट्रकूट राजवंश का अंत कर दिया एवं तैलप द्वितीय ने परवर्ती चालुक्य वंश की स्थापना की। दूसरी तरफ प्रतिहार साम्राज्य टूट गया और उसकी जगह उसके बहुत सारे सामंत स्वतंत्र हो गए। आगे प्रतिहार क्षेत्र में राजपूत राज्यों का उदय हुआ।

राष्ट्रकूटों ने न केवल राजनीति बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। विशेष रूप से कन्नड़ साहित्य के विकास में इनका योगदान उल्लेखनीय है जो दक्षिण में तमिल के बाद सबसे पुरानी भाषा है। इनकी वास्तुकलात्मक उपलब्धियां भी अत्यन्त सुन्दर है। राष्ट्रकूट शासक शिक्षा–प्रेमी थे, उन्होने शिक्षा की समुचित व्यवस्था की, ब्राह्मणों को प्रदत अग्रहारों में संस्कृत की उच्च शिक्षा दी जाती थी। अग्रहारों को राज्य की तरफ से आर्थिक सहायता दी जाती थी। ऐसे अनेक अग्रहारों की स्थापना राज्य के द्वारा की जाती थी जिनमें विद्यार्थीयों के आवास, शिक्षा एवं भोजन की व्यवस्था की जाती थी। शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। अग्रहारो के अतिरिक्त मंदिर एवं जैन तथा बौद्ध विहार भी शिक्षा प्रदान करते थे। संत्लोगी का त्रयीपुरूष मंदिर शिक्षा का बड़ा केंद्र था। शिक्षा के विकास के साथ ही संस्कृत, कन्नड़ और मराठी भाषा एवं साहित्य का विकास हुआ।

यद्यपि संस्कृत को कम सरंक्षण मिला। फिर भी राजशेखर जैसे संस्कृत के विद्वान को दरबार में संरक्षण मिला। प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखने वाले विद्वानों को भी संरक्षण मिला। कवि स्वयंभू राष्ट्रकूट दरबार में रहते थे, उन्होने संभवतः कन्नड़ में काव्य शास्त्र पर प्रारंभिक ग्रंथ लिखा। सोमदेवसूरी, अरिकेसरी द्वितीय के, जो कृष्ण तृतीय के अधीन एक सामंत था, के दरबार में रहते थे, उन्होने 'नीति वाक्यामृत' एवं यशस्तिक चम्पू की रचना की। इसका दूसरा समकालीन कवि हलायुध था, जिसने कविरहस्य रचा ।

राष्ट्रकूट शासकों ने कन्नड़ साहित्य को व्यापक संरक्षण दिया। कन्नड़ पर प्रथम व्यापक ग्रंथ 'कविराजमार्ग' है। इसे राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष ने नृपतुंग के नाम से लिखा है। कन्नड़ साहित्य व भाषा के विकास में जैनियों का प्रमुख योगदान है। महान गणितज्ञ महावीराचार्य को इनका प्रश्रय मिला। इस युग के प्रमुख विद्वानों में कुमारिल वाचस्पति, कात्यान, हलायुध अवलक, विद्यानंद जिनसेन, प्रभाचंद्र, हरिवेणु गुणचंद और सोमदेव का उल्लेख किया जा सकता है।

राष्ट्रकूटों के समय जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण तीनों ही धर्म प्रचलित थे। परन्तु बौद्ध धर्म की अवनति हो रही थी। समाज में इसका ज्यादा प्रभाव नहीं था। बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म ज्यादा प्रभावशाली हो गया। अनेक राष्ट्रकूट राजाओं ने जैसे अमोघवर्ष आदि ने जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया। फलतः यह धर्म ब्राह्मण धर्म का मुख्य प्रतिद्वन्दी बन गया। इस धर्म के अंतगर्त विष्णु, शिव, लक्ष्मी, आदिशक्ति

और पांडुरंग की पूजा की जाती थी। धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति लोगों की आशक्ति तथा श्रद्धा थी। विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के अस्तित्व के बावजूद सामाजिक वातावरण धार्मिक कट्टरता एवं संकीर्णता से दूर था। राष्ट्रकूटों के समय दक्षिण में इस्लाम धर्म का भी प्रचार हुआ। राष्ट्रकूटों ने अपने राज्य में अरबों को बसने तथा मस्जिद बनाने की सुविधा दी। इसके परिणामस्वरूप भारतीय तथा अरबों में सांस्कृतिक संबंध का विकास हुआ।

राष्ट्रकूट शासनकाल में कला के क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं हो सकी क्योंकि शासकों का समय युद्धों में बीता। इसके बावजूद उस समय कुछ मंदिर बनवाए गए जो स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते है। मंदिरों का भी शैक्षिण एवं सांस्कृतिक महत्व था। राष्ट्रकूटों के महान स्थापत्य के उदाहरण एलोरा से मिलते है। एलोरा स्थित रावण की खाई, दशावतार तथा कैलाशमंदिर राष्ट्रकूट कला के ज्वलंत उदाहरण है। दशावतार मंदिर पहले बौद्ध मंदिरों के समान है अर्थात इनमें एक स्तंभयुक्त बरामदा एवं गर्भगृह है। यह दो मंजिला मंदिर है इसमें 44 स्तंभों पर टिकी हुई चपटी छत है। दीवारों पर चारों ओर भित्ति स्तंभों के बीच पौराणिक हिन्दू देवताओं की उभारी हुई आकृति है। एक ओर वैष्णव एंव दूसरी ओर शैव आकृतियां हैं। रावण की खाई आयताकार है। इस पर्वत कंदरा में एक स्तंभयुक्त मंडप तथा गर्भगृह है, गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ है, यहाँ भी दीवार की भित्ति स्तंभ पर वैष्णव एवं शैव की उभरी हुई मूर्तियाँ उकेरी गई है।

पर्वत शिलाओं को खोदकर भवन निर्माण के विकास का चरमोत्कर्ष एलोरा का कैलाश मंदिर है। इस मंदिर को बनाने वालों ने पुरानी परंपराओं को एकदम त्यागकर चट्टान को तराश कर स्वतंत्र मंदिर बनाए। इस मंदिर का आकार पट्टादकल के चालुक्यकालीन विरूपाक्षमंदिर की भाँति है, किन्तु यह इससे दोगुना बड़ा है। यह मंदिर राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम ने पाषाण काटकर उसकी गुफा में बनवाया था। अल्तेकर का मत है कि कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण पल्लवों की राजधानी काँची से बुलाए गए कलाकरों ने किया। यह गहरे दक्षिण एवं दक्कन के बीच होने वाले सांस्कृतिक आदान–प्रदान का प्रतीक है। इस दिशा में राष्ट्रकूटों ने महत्वपूर्ण योगदान किया। कैलाशमंदिर संसार में प्रास्तर कला की महान तथा अद्वितीय कृति है। सारा मंदिर तक्षण कला से अंलकृत है। संभवतः राष्ट्रकूट काल में ही कुछ गुहाओं एवं उनमे स्थापत्य कृतियों का निर्माण हुआ। एलिफेंटा के गुहामंदिर इस वास्तुकला की अंतिम उपलब्धि है।

एलोरा का कैलाश मंदिर द्रविड़ वास्तुकलात्मक अवधारणा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। मंदिर का प्रांगण चार मुख्य भागों में बँटा है – विमान जिसकी ऊँचाई 29 मीटर है, मण्डप, नंदी और दोमंजिला गोपुरम जिसमें सभी की अक्षीय लम्बाई बराबर है। जो द्रविड़ शैली की मूलभूत पद्धति है, इसमें पहाड़ी के पार्श्व को तीन बड़ी खाईयों के रूप में खोदा गया है तथा आधार को उर्ध्वाधर काटा गया है जिससे 300 फीट/175 फीट के एक आयात का निर्माण हुआ। खाईयों के बीच में पत्थर को खोदकर एक इमारती मंदिर का निर्माण किया गया है।

एलोरा में दो और राष्ट्रकूटों के स्मारकों – रावण की खाई एवं दशावतार उल्लेखनीय है। रावण का खाई एक तार्किक एवं हिन्दुकृत योजना है जिसमें मुख्य ग्रह के ऊपर स्तंभयुक्त हॉल है। इसकी

मुख्य मूर्ति कैलाश पर्वत को हिलाते हुए रावण की है। दशावतार मंदिर इस दृष्टि से विशिष्ट है कि इसमें एकाश्म मण्डप है जिसके ऊपर अंतकृत गवाक्ष है। यह एलोरा का एकमात्र स्मारक है जिस पर ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण अभिलेख है। इसका निर्माण संभवतः दंतिदुर्ग ने कराया था। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि वर्णित काल में भारतीय इतिहास का ओज दक्षिण में था ।

सन्दर्भ सूची :

1. दी राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स, ए.एस. अल्तेकर
2. प्राचीन भारत का इतिहास, डी.एन. झा एवं श्रीमाली
3. भारतीय कला, वी.एस. अग्रवाल
4. दी हिस्ट्र एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डिन पीपल, आर.सी. मजुमदार एण्ड डी. पुसालकर
5. प्राचीन भारत, डी.एन. झा
6. वृहद भारत का इतिहास भाग – 1, आर.सी. मजूमदार, एच.सी चौधरी, के. के. दत्त
7. प्राचीन भारत का इतिहास, एल.पी. शर्मा